International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 7 Issue 01||January. 2018 || PP.101-103

रसिक गोविंद कृत 'गोविदानंदघन में पददोष'

डॉ0 प्रियंका गुप्ता
ऐसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग एम.एच. पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद, उ0प्र0

काव्यशास्त्र में दोष शब्द से अभिप्राय है– "काव्यदोष'। आचार्य हेमचन्द्र ने 'रसस्यापकर्षहेतुवस्तु दोषाः' कहकर दोषों का सामान्य लक्षण प्रस्तुत किया था। संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रारम्भिक काल से ही काव्यदोषों का व्यापक स्तर पर विवेचन किया गया है और यह प्रमाणित किया गया है कि निर्दोषता सफल काव्य की प्रथम आवश्यकता है। दोष परिहार को काव्य का गुण मान लिया गया है।

दोषों के सम्बन्ध में आचार्यों के दो वर्ग हैं– प्रथम वर्ग में वे आचार्य हैं, जो नितांत निर्दुष्ट रचना को ही काव्य मानने के पक्ष में है। इस वर्ग के आचार्यों में भामह, दण्डी, रुद्रट, केशवमिश्र और वाग्भट्ट का नाम लिया जा सकता है। भामह ने दोषयुक्त काव्य को कुपुत्र की भांति निंदा का पात्र माना है। इनका मानना है किः 'काव्य में एक भी दोषयुक्त शब्द का समावेश नहीं होना चाहिए, क्योंकि कवि का नहीं लिखना न तो अधर्म है और न व्याधिकारक, किंतु बुरा काव्य या सदोष– काव्य की रचना करना तो साक्षात मृत्यु के समान है।[1] लगभग यही मत आचार्य दण्डी का भी है : दोष–रहित तथा गुण एवं अलंकार से युक्त काव्य कामधेनु की भांति है, पर दोषयुक्त काव्य तो कवि की मूर्खता प्रकट करता है। जिस प्रकार सुंदर शरीर पर श्वेत कुष्ठ का दाग उसे असुंदर एवं गर्हित बना देता है उसी प्रकार दोषों के कारण काव्य भी दूषित हो जाता है।[2] केशवमिश्र ने दोष को रस का हानिकारक एवं सर्वथा त्याज्य माना हैः ''दोषः सर्वात्मना त्याज्यो रसहानिकरो हि सः।''[3]

द्वितीय वर्ग के आचार्यों ने दोषों के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया है। इस वर्ग के आचार्यों में भरत और "विश्वनाथ का नाम लिया जा सकता है। भरत का मत है कि : "संसार में कोई भी वस्तु दोषरहित– नहीं है, अतः "विद्वानों को इस पर अधिक विचार नहीं करना चाहिए।[4] उन्होंने नितान्त निर्दुष्ट काव्य की कल्पना नहीं की है।

1– दोष लक्षण :– रसिकगोविंद ने मुख्य अर्थ को न्यून करने वाले तत्त्व को दोष कहा है :

'मुख्यार्थ कौं नून करै, सो दोष।'

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि मुख्य अर्थ क्या है? इसकी स्पष्टीकरण करते हुए रसिकगोविंद लिखते हैं कि रस ही मुख्यार्थ है। रस के आश्रय होने से वाच्य अर्थ भी मुख्य है। इन दोनों रसादि एवं अर्थ के उपयोगी प्रतिपादक होने से और प्रतिपाद्य तथा प्रतिपादक में वर्ण आदि भी मुख्यार्थ हैं। इस प्रकार मुख्यार्थ कहने में इन सबका बोध होता है।

विद्वानों ने साधारणतः काव्यास्वाद के समय सहृदय के चित्त में उत्पन्न होने वाले उद्वेग को दोष कहा है। संस्कृत काव्यशास्त्र में दोष निरूपण की दो सारणियाँ हैं। पूर्ववर्ती आचार्य भरत ने गुण के विपर्यय को दोष कहा थाः 'एत एव विपर्यस्ता गुणाः काव्येषु कीर्तिताः[5] जबकि ध्वनिवादी आचार्य ने रस के अपकर्षकों को दोष की संज्ञा से अभिहित किया है।

आनन्दवर्धन ने दोष निरूपण में नवीन प्रयोग किया है। उन्होंने दोषों के दो विभाग किये हैं–नित्य और अनित्य। नित्य दोष रसाकर्षक के हेतु हैं और अनित्य दोषों में श्रुतिकतुत्व आदि आते हैं। मम्मट ने मुख्यार्थ के अपकर्ष को दोष कहा है और काव्य में मुख्यार्थ रस ही हैः "मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्याः।[6] आचार्य विश्वनाथ भी इसी मत के समर्थक हैं। उन्होंने रसाकर्षक या रस के विधातक तत्त्व को दोष माना है। उन्होंने रसापकर्ष की तीन संभावनाएं भी व्यक्त की हैं–रसप्रतीति का अभाव, विलम्ब से रसप्रतीति तथा रसबोध में चमत्कार की मात्रा की न्यूनता। कहने का आशय है कि रस या मुख्यार्थ के अपकर्षक तत्त्व ही दोष हैं। ये प्रधानतः रस या विषयवस्तु से संबन्धित होकर भी गौणतः शब्द और अर्थ से सम्बन्धित होते हैं।

स्पष्ट है कि दोष किसी भी रूप में रहें वह सर्वथा त्याज्य हैः क्योंकि दोषरहित काव्य ही सहृदय को आनंदानुभूति कराने में सहायक होता है।

2– दोष विवेचनः– रसिकगोविंद ने दोष के पाँच प्रकार बताये हैं :

1. पददोष 2. पदांश दोष 3. वाक्य दोष 4. अर्थ दोष 5. रस दोष

भामह और दण्डी ने दोषों का विभाग नहीं किया है। सर्वप्रथम आचार्य वामन ने दोषों का शब्द और अर्थ के आधार पर विभाजन किया। आचार्य मम्मट ने दोषों के तीन भेद किए हैंः शब्द दोष, अर्थ दोष और रस दोष। शब्ददोष के भी वे तीन विभाग करते हैं : पददोष, पदांशदोष, वाक्यदोष। आचार्य. विश्वनाथ ने पाँच भेदों को माना हैः पददोष, पदांशदोष, वाक्यदोष, अर्थदोष और रसदोष। रसिकगोविंद ने दोष विवेचन में विश्वनाथ को उपजीव्य बनाया है।

पददोषः– रसिकगोविंद ने सोलह प्रकार के पददोषों का निरूपण किया है। इन्हें शब्ददोष भी कहा गया है।

(1) श्रुतिकदु (2) संस्कारहत (3) अप्रयुक्त (4) असमर्थ (5) तिहतार्थ (6) निरर्थक (7) त्रिविधि अश्लील (8) अनुचितार्थ (9) अवाचक (10) ग्राम्य (11) अप्रतीत (12) संदिग्ध (13) नेयार्थ (14) क्लिष्ट (15) अविमृष्टविधेयांश (16) विरुद्धमतिकृत।

1– श्रुतिकटुः– रसिकगोविंद कानों को कटु अथवा कठोर लगने वाली रचना को श्रुतिकटु कहते है। यह कदुता सुनने वाले के उद्वेग पर निर्भर करती है. अतः यह दोष अनित्य होता है : "कांननि कौ करुवौ लगै सो श्रुति कटु। सुनिबे वारे कौ उद्वेग दोष मैं कारन यह दोष अनित्य है।' विश्वनाथ इसे 'दुःश्रवत्व' कहते हैं। इनके अनुसार अक्षर कठोर होने के कारण कानों को खटके तो दुःश्रवत्व दोष होगाः "परुषवर्णतयाश्रुतिदुखावहत्व दुःश्रवत्वम्।'[7]

2– संस्कारहतः– रसिकगोविंद ने– शास्त्रों के विरुद्ध रचना को संस्कारहत कहा है : 'सास्त्र विरूद्ध जो पद, सो संस्कारहत।' मम्मट ने इसे 'च्युतसंस्कृति' कहा हैः 'च्युतसंसकृतिव्याकरणलक्षणहीन यथा।[8] च्युतसंस्कृति का अर्थ है–संस्कार या व्याकरण लक्षण से च्युत होना गिर जाना या व्याकरण–नियमों के विरुद्ध होना। यह दोष नित्य होता है।

3– अप्रयुक्तः– रसिकगोविंद के अनुसार जिस पद में कवि प्रयोग न कर सके। वहाँ अप्रयुक्त दोष होता है। यमक श्लेष और चित्र की योजना में अप्रयुक्त दोष नहीं माना जाता। 'जा पद विषै कवीश्ररनि कौ प्रयोग नहीं, सो अप्रयुक्त। संकेत निषेध दोष मैं कारण। जमक, श्लेष चित्र इन मैं अंगीकार करिवें तैं।'

मम्मट का मत हैं कि व्याकरण, कोष आदि के द्वारा सिद्ध होने पर भी ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाये, जो काव्य में अप्रचलित, हों तो अप्रयुक्त दोष होता हैः अप्रयुक्तं तथा ऽऽम्नातमपिकविभिर्नादृमत्।'[9]

4– असमर्थः– रसिकगोविंद का मत है कि प्रसिद्धअर्थ का बोध कराने में जो रचना असमर्थ होती है, वहाँ असमर्थ दोष होता है। इसका मुख्य कारण यथायोग्य अर्थ की प्रतीति न होना है। "प्रसिद्धार्थ रहित पद कहनौ सो असमर्थ। जथाजोग्य अर्थ की अप्राप्ति दोष में कारन।' रसिकगोविंद का मत मम्मट की कारिकाः 'असमर्थयत्तदर्थपठ्यते न च तत्रास्य शक्तिः।' का भावानुवाद प्रतीत होता है।

5– 'निहतार्थः– रसिकगोविंद ने दो अर्थ वाले शब्द का अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त होने में निहतार्थ दोष की अवस्थिति मानी है। मुख्य अर्थ की प्रतीति में विलंब होना इस दोष का कारण हैः 'उभायार्थ वाचक कौ अप्रसिद्धार्थ विषै कहनौ, सो निहितार्थ। विलब करि कै अर्थ की प्राप्ति, दोष मैं कारण।'

रसिकगोविंद यमक और श्लेष में इस दोष को नहीं मानते। मम्मट ने दो अर्थ वाले शब्द का अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त होने में निहितार्थ दोष माना हैः 'निहतार्थ यदुभयार्थमप्रसिद्वदेयर्थे प्रयुक्तम्।'[10]

6– निरर्थकः– रसिकगोविंद मात्र छंद आदि की पूर्ति के लिए अनावश्यक शब्दों के विन्यास को निरर्थक दोष कहते है। पादपूर्ति का भाव इस दोष का कारण होता है :

'केवल पूर्णादिक प्रयोजन कौ पद कहनौ, सो निरर्थक प्रयोजना भाव दोष मैं कारन।'

मम्मट का भी यही मत हैः "निरर्थकं पादपूरणमात्रप्रयोजनंचादिपदम्।' रसिकगोविंद की परिभाषा मम्मट का भावानुवाद मात्र है।

7– अश्लीलः– रसिकगोविंद ने बुरा लगने वाली रचना को अश्लील कहा है। लज्जा, अमंगल और ग्लानिवाची शब्दों में अश्लील दोष होता हैः

"बुरौ लगै सो असलील। लज्जा अमंगल ग्लानि होनौ दोष में कारण।' मम्मट ने लज्जासूचक, घृणाप्रदर्शक अथवा अमंगल वाची शब्दों के प्रयोग में अश्लील दोष की अवस्थिति मानी हैः 'त्रिधेति व्रीडाजुगुप्साउमंगल व्यंजकत्वाद्।'[11]

8– अनुचितार्थ :– रसिकगोविंद का मत है कि वर्णन करने योग्य अर्थ को जहाँ तिरस्करी अर्थ में कहा जाये वहाँ अनुचितार्थ दोष होता है। अभिष्ट अर्थ का तिरस्कार इस दोष में कारण होता हैः

'बर्नन करिवे जोज्ञ अर्थ कौ तृस्कारकारी अर्थ सहित पद कहनौ सो अनुचितार्थ बिवक्षत अर्थ कौ त्रस्कार दोष मैं कारन।'

मम्मट के अनुसार जब किसी शब्द का प्रयोग करने से अभीष्ट अर्थ का तिस्कार हो तो वहाँ अनुचितार्थ दोष होता है।

9– अवाचकः– रसिकगोविंद ने कहने योग्य अर्थात् अभीष्ट अर्थ को न कहे जाने में अवाचक दोष की अवस्थिति मानी है। मुख्यार्थ से विपरीत अर्थ का बोध इस दोष में कारण 'कहिवे जोज्ञ अर्थ कौं पद नहीं कहै, सो अवाचक। विपरीत अर्थ कौ बोध होनौं दोष मैं कारन' साहित्यशास्त्र कोश के अनुसार जिस अभीष्ट अर्थ के लिए किसी शब्द का प्रयोग हो और उससे वह अर्थ न निकले तो वहाँ अवाचक दोष होता है।

10– ग्राम्यः– रसिकगोविंद का मत है कि केवल गाँव में स्थित होने वाली रचना को ग्राम्य कहते हैं। सुनने वाले की विषमता इस दोष में कारण होती है :

"केवल लोक ही मैं स्थिर होइ जो पद सो ग्राम्य। सुनिवे वारे कौ बिमुषता दोष मैं कारना! मम्मट का मत है कि केवल गँवार व्यक्तियों में व्यवहृत होने वाले शब्दों का प्रयोग किया जाये तो वहाँ ग्राम्य दोष होता हैः "ग्राम्य यत्केवले लोके स्थितम्।' रसिकगोविंद का भी यही भाव है लेकिन वह इसे स्पष्ट नहीं कर सके हैं। वह विदूषक आदि के वाक्य में इस दोष की अवस्थिति नहीं मानते।

11– अप्रतीतः– रसिकगोविंद का मत है कि शास्त्रों और देश विशेष में प्रसिद्ध शब्दों के प्रयोग में अप्रतीत दोष होता है। उस शास्त्र और उस देश को न जानने वालों को अर्थ ग्राप्ति में होने वाली कठिनता में यह दोष होता है। 'सास्त्रांतर मै अरु देसांतर मै प्रसिद्ध संकेत होइ, सो अप्रतीत। वा सास्त्र के वा देश के जानिवे वारे कौं अर्थ की अप्राप्ति दोष के कारण।'

मम्मट के अनुसार किसी शास्त्र के परिभाषिक शब्द का जब काव्य में प्रयोग हो (जो लोक में अप्रचलित हो) तो अप्रतीत दोष होता हैः 'अप्रतीत यत्केवलेशास्त्रे प्रसिद्धम्।'[12]

12– संदिग्धः– रसिकगोविंद ने वांछित अथवा अवांछित अर्थात अनिर्धारित रचना में संदिग्ध दोष माना है। अभीष्ट अर्थ के निश्चय के अभाव में यह दोष होता है :

'अनिर्द्धारित पद को कहनो, सो संदिग्ध। कहिबै जोग्य अर्थ के निश्चय कौ अभाव दोष मैं कारण।' रसिकगोविंद की परिभाषा काव्यशास्त्र की मान्य धारणा के अनुरूप है।

13– नेयार्थ :– रसिकगोविंद ने लक्षणाशक्ति का प्रयोग करके अर्थ की प्राप्ति में नेयार्थ दोष माना है। लक्षणा का ज्ञान न होने के कारण अर्थ प्राप्ति में असमर्थतता इस दोष में कारण होती है :
'लक्षण करिके अर्थ की प्राप्ति होइ जा पद मैं, सो नेयार्थ। लक्षण ज्ञान रहित कौ अर्थ की अप्राप्ति दोष मैं कारण।'
मम्मट ने लक्षणा शक्ति के असंगत होने में नेयार्थ दोष माना है।[13]
14– क्लिष्टः– रसिकगोविंद का मत है कि जिस रचना के अर्थ करने में व्यवधान हो, वहाँ क्लिष्ट दोष होता है।अर्थ प्रतीति में विलंब इस दोष में कारण होता हैः बिबिधान करिकै अर्थ कौ प्राप्ति होइ जा पद मैं सो क्लेष्ट। विलंव करि के अर्थ कौ प्राप्ति दोष में कारन।'
भरत ने इसे गूढ़ार्थ का नाम दिया है। मम्मट के अनुसार जब अर्थप्रतीत विलंब से हो तो क्लिष्ट दोष होता हैः 'क्लिष्टं यतोर्थप्रतिपत्तिर्व्यवहिता।'
यमक अलंकार में यह दोष मान्य नहीं होता है।
15– अविमृष्टविधेयांशः– रसिकगोविंद का मत है कि जहाँ विधेय अर्थात अभीष्ट अर्थ के अंश पर विचार न किया जाये, वहाँ अविमृष्टविधेयांश दोष होता है। अभीष्ट अर्थ की शीघ्र अप्राप्ति इस दोष के कारण होतीं हैं; 'बिना बिचारैं बिधेय कौ जो कहनौ सो अविमृष्टेविधेयांश। विधेयार्थ की सीघ्र अप्राप्ति दोष
कौं कारन।'
मम्मट के अनुसार जब विधेय अर्थ अर्थात् अभीष्ट अर्थ के अंश की प्रधानता पर विचार न किया जाये तो वहाँ अविमृष्टविधेयांश दोष होता हैः 'अविमृष्टः प्राधान्येनानिर्दिष्टो विधेयांशो यत्र तत्।[14]
16– विरुद्धमतिकृतः– रसिकगोविंद का मत है कि जहाँ प्रकृत विषय के विरुद्ध अर्थ की प्रतीति हो, तो वहाँ विरुद्धमतिकृत दोष होता है। विपरीत अर्थ की प्राप्ति इस दोष में कारण होती हैः
'बिरुद्ध बुद्धिकारी जो पद सो विरुद्धमतिकृत। विरुद्ध अर्थ कौ प्राप्ति दोष मैं कारन।'
मम्मट ने प्रकृत विषय के विरुद्ध अर्थ की प्राप्ति में विरुद्धमतिकृत दोष की अवस्थिति मानी है।

संदर्भ सूची

1. भामह : काव्यालंकार, 1/11, 12
2. दण्डी : काव्यादर्श, 1/6, 7
3. केशवमिश्र : अलंकार शेखर, पृ0–1
4. भरत नाट्यशास्त्र – 17/47
5. भरत नाट्यशास्त्र – 17/95
6. मम्मट : काव्यप्रकाश, 4/49
7. विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, 7/2
8. मम्मट : काव्यप्रकाश, 7/50
9. मम्मट : काव्यप्रकाश, 7/50
10. मम्मट : काव्यप्रकाश, 7/50
11. मम्मट : काव्यप्रकाश, 7/50–51
12. मम्मट : काव्यप्रकाश, 7/50–51
13. मम्मट : काव्यप्रकाश, 7/50
14. मम्मट : काव्यप्रकाश, 7/51